# विक्रमादित्यकथा उपन्यास तथा प्राचीन भारतीय युद्ध कला

शोधार्थी-विकास कुमार
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
भारतीय भाषा विद्याशाखा(हिंदी)
शोध निर्देशक- डा.सुभाष चन्द्र (हिंदी)

## शोधसार

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से राधावल्लभ त्रिपाठी कृत विक्रमादित्यकथा उपन्यास तथा वेदों,उपनिषदों एवं पुराणों में वर्णित प्राचीन भारतीय युद्ध कला को उद्घाटित करने का प्रयास किया है ।

## भूमिका

भारत भूमि प्रारंभ से ही विभिन्न संस्कृति एवं कला से समृद्ध रही है,इसका प्रमुख कारण संभवतः प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति रही है,यही कारण था कि विश्व-भर से विद्यार्थी एवं विद्वान शिक्षा ग्रहण करने भारत आया करते थे।प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति ऋषि-मुनियों अथवा आचार्यों के द्वारा गुरुकुलों में संचालित की जाती थी,जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के विद्याओं एवं कलाओं से अवगत कराया जाता एवं प्रशिक्षण तथा अभ्यास कराया जाता था।विभिन्न भारतीय ग्रंथों में विद्याओं की संख्या को लेकर आचार्यों के मध्य मतभेद अवश्य दिखायी देते हैं शुक्रनीतिसार में इनकी संख्या 32 विष्णुपुराण में 18 बताई गयी है और कहीं 16, आचार्य मनु के मतानुसार विद्याएँ 14 प्रकार की हैं-

**‘विद्या ह्यनन्ताश्च कलाः संख्यातुं नैव शक्यते ।**

**विद्या मुख्याश्च द्वात्रिंशच्चतुःषष्टिः कलाः स्मृताः ॥1’**

अर्थात् चार वेद- **ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद।**

चार उपवेद- **आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, शिल्पशास्त्र।**

चार उपांग – **पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र ।**

छः वेदांग – **शिक्षा, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, कल्प, निरुक्त**

इन विद्याओं के साथ 64 कलाओं का उल्लेख किया गया है, आचार्य शुक्रचार्य ‘कला’ को परिभाषित करते हुए लिखते हैं – ‘**यद् यत् स्याद् वाचिकं सम्यक् कर्म विद्याभिसंज्ञकम् ।**

**शक्तो मूकोऽपि यत् कर्तुं कलासंज्ञन्तु तत् स्मृतम् ॥2’**

‘जो काम बोलकर ठीक ढंग से पूरा किया जा सकता है,वह विद्या है और जिन्हें गूंगा व्यक्ति भी हाथ-पैरों की सहायता से कर सकता है, वह कला है’

64 कलाओं का उल्लेख हमें कई संस्कृत ग्रंथों में मिलता है '**यजुर्वेद**' में इन कलाओं का उल्लेख तीसवें अध्याय के चौथे मंत्र से बाईसवें तक है, '**शुक्रनीतिसार**' के चौथे अध्याय के तृतीय प्रकरण में, '**कामसूत्र**' में इसका वर्णन प्रथम अधिकरण के तीसरे अध्याय में, वहीं '**भगवतपुराण**' के दशम स्कन्ध के 45वें अध्याय के 36वें श्लोक में इसका उल्लेख इस प्रकार से किया गया है-

**'अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः**

**गुरुदक्षिणयाचार्यं उन्दयामासतुर्नृप**[3]'

'शुक्रनीतिसार' तथा 'कामसूत्र' में उल्लेखित 64 कलाएँ निम्नलिखित है[4]-

| 'शुक्रनीतिसार' में 64 कलाएँ | 'कामसूत्र' में 64 कलाएँ |
|---|---|
| (1)नर्तन (नृत्य), (2) वादन, (3) वस्त्रसज्जा, (4) रूपपरिवर्तन, (5) शैय्या सजाना, (6) द्यूत क्रीड़ा, (7) सासन रतिज्ञान, (8) मद्य बनाना और उसे सुवासित करना, (9) शल्य क्रिया, (10) पाक कार्य, (11) बागवानी, (12) पाषाणु, धातु आदि से भस्म बनाना, (13) मिठाई बनाना, (14) धात्वोषधि बनाना, (15) मिश्रित धातुओं का पृथक्करण, (16) धातुमिश्रण, (17) नमक बनाना, (18) शस्त्रसंचालन, (19) कुश्ती (मल्लयुद्ध), (20) लक्ष्यवेध, (21) वाद्यसंकेत द्वारा व्यूहरचना, (22) गजादि द्वारा युद्धकर्म, (23) विविध मुद्राओं द्वारा देवपूजन, (24) सारथ्य, (25) गजादि की गतिशिक्षा, (26) बर्तन बनाना, (27) चित्रकला, (28) तालाब, प्रासाद आदि के लिए भूमि तैयार करना, (29) घटादि द्वारा वादन, (30) रंगसाजी, (31) भाप के प्रयोग- जलवाटवग्नि संयोगनिरोधैः क्रिया, (32) नौका, रथादि यानों का ज्ञान, (33) यज्ञ की | (1)गीतविद्या, (2)वाद्य - भांति-भांति के बाजे बजान,(3)नृत्य,(4)नाट्य(5) चित्रकारी(6)बेल-बूटे बनाना(7)चावल और पुष्पादि से पूजा के उपहार की रचना करना(8)फूलों की सेज बनान(9)दांत, वस्त्र और अंगों को रंगना(10)मणियों की फर्श बनाना(11)शय्या-रचना (बिस्तर की सज्जा),(12)जल को बांध देना(13)विचित्र सिद्धियाँ दिखलाना(14)हार-माला आदि बनाना(15)कान और चोटी के फूलों के गहने बनाना(16)कपड़े और गहने बनाना(17)फूलों के आभूषणों से शृंगार करना(18)कानों के पत्तों की रचना करना(19)सुगंध वस्तुएं-इत्र, तैल आदि बनाना(20)इंद्रजाल-जादूगरी(21)चाहे जैसा वेष धारण कर लेना(22)हाथ की फुती के काम(23)तरह-तरह खाने की वस्तुएं बनाना(24)तरह-तरह पीने के पदार्थ बनाना(25)सूई का काम(26) कठपुतली बनाना, नाचना(27)पहेली28- प्रतिमा आदि बनाना(29)कूटनीति (30)ग्रंथों के पढ़ाने की चातुरी (31)नाटक आख्यायिका आदि की रचना करना(32)समस्यापूर्ति करना(33)पट्टी, बेंत, बाण आदि बनाना(34)गलीचे, दरी आदि बनाना(35)बढ़ई की कारीगरी(36) |

| | |
|---|---|
| रस्सी बाँटने का ज्ञान (34) कपड़ा बुनना, (35) रत्नपरीक्षण, (36) स्वर्णपरीक्षण, (37) कृत्रिम धातु बनाना, (38) आभूषण गढ़ना, (39) कलई करना, (40) चर्मकार्य, (41) चमड़ा उतारना, (42) दूध के विभिन्न प्रयोग, (43) चोली आदि सीना, (44) तैरना, (45) बर्तन माँजना, (46) वस्त्रप्रक्षालन (संभवत: पालिश करना), (47) क्षौरकर्म, (48) तेल बनाना, (49) कृषिकार्य, (50) वृक्षारोहण, (51) सेवाकार्य, (52) टोकरी बनाना, (53) काँच के बर्तन बनाना, (54) खेत सींचना, (55) धातु के शस्त्र बनाना, (56) जीन, काठी या हौदा बनाना, (57) शिशुपालन, (58) दंडकार्य, (59) सुलेखन, (60) तांबूलरक्षण, (61) कलामर्मज्ञता, (62) नटकर्म, (63) कलाशिक्षण, और (64) साधने की क्रिया। | गृह आदि बनाने की कारीगरी(37)सोने, चांदी आदि धातु तथा हीरे-पन्ने आदि रत्नों की परीक्षा(38)सोना-चांदी आदि बना लेना<br>(39)मणियों के रंग को पहचानना(40) खानों की पहचान(41) वृक्षों की चिकित्सा(42)भेड़ा, मुर्गा, बटेर आदि को लड़ाने की रीति(43)तोता-मैना आदि की बोलियां बोलना(44)उच्चाटनकी विधि(45) केशों की सफाई का कौशल(46) मुट्ठी की चीज या मनकी बात बता देना(47) म्लेच्छित-कुतर्क-विकल्प(48)विभिन्न देशों की भाषा का ज्ञान(49) शकुन-अपशकुन जानना, प्रश्नों उत्तर में शुभाशुभ बतलाना(50)नाना प्रकार के मातृकायन्त्र बनाना(51) रत्नों को नाना प्रकार के आकारों में काटना(52) सांकेतिक भाषा बनाना(53) मनमें कटकरचना करना(54) नयी-नयी बातें निकालना(55) छल से काम निकालना(56)समस्त कोशों का ज्ञान(57) समस्त छन्दों का ज्ञान(58) वस्त्रों को छिपाने या बदलने की विद्या(59)द्यूत क्रीड़ा(60) दूरके मनुष्य या वस्तुओं का आकर्षण(61)बालकों के खेल(62) मन्त्रविद्या(63)विजय प्राप्त कराने वाली विद्या(64) बेताल आदि को वश में रखने की विद्या |

उपर्युक्त दी गयी सूची से हमें यह ज्ञात होता है कि विभिन्न ग्रंथों में लिखित 64 कलाओं में विभिन्नता है,आचार्य वात्स्यायन द्वारा रचित **'कामसूत्र'** में वर्णित 64 कलाएँ अधिक प्रचलित एवं विद्वानों द्वारा मान्य है।इन सभी कलाओं के प्रशिक्षण के माध्यम से छात्रों को न केवल जीविकापार्जन का गुण सिखाया जाता था बल्कि उनका सर्वागीण विकास करना भी इन कलाओं का प्रमुख ध्येय था।

इन्ही कलाओं में युद्ध कला का भी उल्लेख मिलता है जिसे **'कामसूत्र'** में 'विजय प्राप्त कराने वाली विद्या' कहा गया है, **'शुक्रनीतिसार'** में कहा गया है-"जिसके ज्ञान से मनुष्य युद्ध करने, शस्त्र-अस्त्र संचालन और व्यूह-रचना आदि में कुशलता प्राप्त करता है, उसे यजुर्वेद का उपवेद 'धनुर्वेद कहते हैं।"-

**'युद्धशस्त्रास्त्रव्यूहादिरचनाकुशलो भवेत् ।**

**यजुर्वेदोपवेदोऽयं धनुर्वेदस्तु येन सः ॥5'**

बाह्य आक्रमण से सुरक्षा,बर्बरता को रोकने हेतु, अन्याय एवं अनाचार को समाप्त करने अथवा रोकने के उद्देश्य आदि कारणों से युद्ध कला एवं नीति का विशेष महत्व था। राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी तथा इश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था और प्रजा की रक्षा करना राजा का प्रथम कर्तव्य था, प्रजा की रक्षा का उत्तदायित्व राजा और उसके प्रशिक्षित सैन्य शक्ति में निहित थी।–

**रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजातप्रभुः ।।6** **वि.पु. 7.3**

## युद्ध-कला का भारतीय दृष्टिकोण

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने युद्ध को एक सामजिक दोष माना है,परन्तु युद्ध एक अनिवार्य दोष भी है क्योंकि अनेक कारणों से मानव जाति को युद्ध का हिस्सा बनना पड़ता रहा है फिर चाहे प्रजा की सुरक्षा हो, बाह्य आक्रमण हो अथवा धर्म की स्थापना हो या अधर्म का संहार करना हो।भारतीय ऋषि-मुनि युद्ध की इस विभीषिका तथा इसके नकारात्मक परिणामों से पूर्ण रूप से परिचित थे अतःयुद्ध के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के उद्देश्य से एवं विश्व बंधुत्व के विकास हेतु अनेकों ग्रंथों में उद्दात विचारों का प्रतिपादन किया गया,विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ **वेद** में इससे संबंधित अनेक उद्धरण मिलते है-

ऋग्वेद में कहा गया है – हमें बड़े-छोटे की भावना का त्याग करना चाहिए।

**'अज्येष्ठासो अक्निष्ठासो एते संभ्रात्रो वावृधुः सौभगया।7'** **-ऋग्वेद 5/60/5**

यजुर्वेद में कहा गया है- संपूर्ण मानव जाति एक ही पिता के पुत्र है।

**'स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।8'** **यजु० वा.सं. ३।४**

इसी प्रकार अथर्ववेद में पारस्परिक स्नेह प्रकट करने का परामर्श दिया गया है।

**'सहृदयं सां मनस्य विद्वेषं कृणोऽमिवः।**

**अन्यो अन्यमभि हर्यंत वत्सं जाताभिवाध्न्या।।9'** **अथर्ववेद ३/३०/१**

संपूर्ण संस्कृत वाङ्मय पर दृष्टिपात करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि इन प्राचीन ग्रंथों में अनेक युद्धों का वर्णन मिलता है,सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद के सप्तम मंडल में दाशराज युद्ध का वर्णन मिलता है,इसे मानव इतिहास का प्रथम युद्ध कहा जाता है तथा इस युद्ध में कई प्रकार के युद्ध नीतियों का प्रयोग किया गया है-

**'दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।**

**श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥10' ऋग्वेद ७/३३**

इसी प्रकार इन्द्र-वृत्र युद्ध को वर्णित किया गया है-

**'तव च्युत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः |**

**निवेशने शतमविवेशिरञ्च वर्त्रं नमुचिमुताहं ||11' ऋग्वेद. ७.१९.५**

वाल्मीकि रामायण में अनेक युद्धों के प्रसंग आते हैं जैसे: बालि- सुग्रीव का युद्ध, शत्रुघ्न-लवणासुर युद्ध, चन्द्र-केतु युद्ध आदि,श्री राम द्वारा लंकापति रावण के वध का वर्णन वाल्मीकि रामयण के 'युद्ध काण्ड' के सर्ग 108 में श्लोक संख्या 23 और 24 में किया गया- वहाँ उल्काएँ और प्रचंड अग्नि गिरी, जो रावण के अंत का संकेत थीं। उन्हें देखकर राक्षस दुःखी हुए-

**'सनिर्घातामहोल्काश्चसम्प्रपेतुर्महास्वनाः ।।**

**विषादयंस्तेरक्षांसिरावणस्यतदाहिताः।।12' वा.रा. ६.१०८.२३**

महाभारत में युद्धों का वर्णन मुख्यतः युद्ध पर्व से प्राप्त होता है परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक युद्धों का वर्णन है जैसे- विराट युद्ध,यदुवंश युद्ध आदि इसी प्रकार के एक युद्ध का वर्णन भीष्मपर्व में मिलता है जब- 'पांडवों की सेना से डरकर कौरवों की सेना भाग गयी तब भीष्म के तीव्र प्रहार से पांडवों की सेना भी भाग खड़ी हुई-

**'वार्यमाणं च भीष्मेन द्रोणेन च महात्मना।**

**विद्रवत्येव तत्सैन्यं पश्यतो भीष्मद्रोणयोः॥13' भी.पर्व ५०/२२-२३**

## युद्ध में प्रयोग होने वाले अस्त्र-शस्त्र

संस्कृत वाङ्मयों में हमें अनेक प्रकार के अस्त्र-शास्त्रों के उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनका उपयोग युद्ध के दौरान शत्रुओं का संहार करने के लिए किया जाता था। 'ऋग्वेद' में हमें वज्र, इषु, निषंग, कवच, वरूथ, ज्या, कुलिश, कटक आदि का वर्णन मिलता है-

**"यु शुभ्र घोरवर्चसः यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तश्रावा जायते देवकामाः"।।14' ऋग्वेद. ७/११८**

अन्य शास्त्रों के साथ धनुष-तीर का भी उल्लेख किया गया है-

**'सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युन्मान्येषाम्।**

**सप्त अधिश्रियो धिरे ।15' - ऋग्वेद ८।२८।५**

'रामायण' में अनेक प्रकार के दिव्यास्त्रों का वर्णन किया गया है,श्री राम को सुधन्वा से धनुर्वेद का प्रशिक्षण मिला तथा आचार्य विश्वामित्र ने अनेक प्रकार के दिव्यास्त्र की दीक्षा दी थी-

**तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ।।**16'

**-वा.रा.अरण्यकाण्ड १२वाँ सर्ग ३६**

'रामायण' के समान ही 'महाभारत' में भी धनुष-बाण, तलवार, मुसल, अंकुश, गदा, हल, चक्र, भालों के साथ-साथ अनेकों प्रकार के दिव्यास्त्रों का उल्लेख किया गया है जैसे आग्नेयास्त्र, कौबेरास्त्र, ब्रह्मास्त्र,पाशुपतास्त्र, आदि-**(महाभारत वनपर्व अध्याय 164-169)**17'

## राज्य सुरक्षा के उपकरण

बाह्य आक्रमण हो जाने की स्थिति में जान-माल के हानि का खतरा बढ़ जाता था,सामान्य नागरिकों को अधिक नुकसान उठाना पड़ता था,इन दुष्परिणामों को कम करने की आकांक्षा से राजा अपने राज्य एवं नागरिकों के सुरक्षा हेतु अनेकों सुरक्षात्मक नीतियों अथवा उपायों का सहारा लिया करते थे जैसे –गुप्तचर अथवा दूत, दुर्ग निर्माण तथा सैन्य संगठन आदि।

### 1.गुप्तचर अथवा दूत की भूमिका

'रामायण' में दूत को 'राजा का नेत्र' कहा गया है- **'यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान् सर्वानर्थान्नराधिपाः। चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ।।**18' **वा.रा. २।३१।९** दूत अनेक प्रकार के कार्यों को कर पाने में सक्षम होते थे जैसे विभिन्न राज्यों में घट रहे प्रमुख घटनाओं की सूचना एकत्र करना, शत्रु राष्ट्र के गुप्त भेदों को जानना, राज्य में चल रही गतिविधियों पर नज़र रखना इत्यादि,दूसरे शब्दों में कहें तो गुप्तचर और दूत में कोई भेद न था।इनके अनेक नामों का उल्लेख हमें विभिन्न ग्रंथों से प्राप्त होता है जैसे वेदों में इनके लिए **स्पर्श** तथा **प्रणिधि** शब्द का प्रयोग किया गया है वेदोत्तर काल में लिखे गये साहित्यों में **दूत, प्रहित, चर, बलगम, स्पर्श** आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।दूत की योग्यता को निर्धारित करते हुए कहा गया है - दूत को विद्वान, चतुर, स्थायी या मूल निवासी, प्रतिभासंपन्न, वाक्पटु, पंडित, शास्त्रविद, दक्ष, सहृदय, धैर्यशील,संयमी, बलशाली तथा उच्च कुलोत्पन्न होना चाहिए-

**'शास्त्रविद्, वाक्यकुशलः, सुहृत् सप्रतिभः शुचिः। |**

**कुले महति चोत्पन्नो दूत एष सतां मतः।।**19' **-वा.रा. ५/८२/१६**

इसी प्रकार से महाभारत में –

**'कुलीनः शीलसम्पन्नों वाग्मी दक्षः प्रियंवदः।**

**यथोक्तवादी स्मर्षतमान दूत स्यात सप्तभिर्गणैः।20'**

**-महाभारत (वीरमित्रोदय-लक्षण, पृष्ठ 226)**

## 2. दुर्ग निर्माण

राज्य को बाह्य आक्रमण से सुरक्षित करने के उद्देश्य से दुर्गों का निर्माण करवाया जाता था।दुर्ग निर्माण एक ऐसी विधि थी जिसमें राज्य को चारों ओर से घेरा जाता था और यह शत्रुओं के लिए अभेद्य होते थे 'ऋग्वेद' में हमें दुर्ग निर्माण कला का परिचय मिलता है ,जिसमे राजा द्वारा लोहे के प्राचीर बनाने का उल्लेख है –

**'बृहन्तं मानं वरुण स्वधा वः सहस्त्रद्वारं जगाम गृहं ते।21' -ऋग्वेद ७।८८/५**

रामायण में दुर्ग का वर्णन करते हुए कहा गया है-'लंका चारों ओर से प्राकृतिक दुर्ग से घिरा हुआ है जिसके कारण यह शत्रुओं के लिए अभेद्य है।

**' लंकादुर्गं समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः**

**भविष्यथ दुराधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ॥22' -वा.रा. ७/५/२४**

आचार्य मनु दुर्ग के विषय में लिखते हैं-

**'दुर्गं च स्थिरमाधारे शस्त्रास्त्रैः परिपूरितम्।**

**तत्र राज्यं सदा स्थाप्यं न च भयं कदाचनम्।23" -मनुस्मृति ८/३६**

आचार्य कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' में दुर्ग की चर्चा करते हुए लिखते हैं "चारों दिशाओं में, जनपद के सीमास्थानों में, युद्ध के लिये उपयोगी स्वाभाविक विकट स्थानो को ही दुर्ग के रूपमें बनवा लेवें। अर्थात् यथावसर युद्ध के लिये ऐसे ही स्थानों का आश्रय लेवें ॥ १ ॥ इस प्रकार के दुर्ग मुख्यतया चार तरह के होते हैं:- औदक,पार्वत, धान्वन और वनदुर्ग। –

**चतुर्दिशं जनपदान्ते सांप।यिकं दैवकृतं दुर्ग कारयेत् ॥१॥ अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमादकं प्रस्तरं गुहां वा पार्वतं निरुदकस्तम्वमिरिणं वा धान्वनं खञ्जनोदकं स्तम्बगहनं वा वनदुर्गम् ॥24'**

## सैन्य संगठन

रण में विजय हेतु एक सशक्त सैन्य संगठन का होना अनिवार्य था,सेना को कई हिस्सों में वर्गीकृत किया जाता था।प्रत्येक सैन्य दल का अपना महत्व था,रामायण में ऐसे कई सैन्य दलों का परिचय मिलता है जैसे पैदल सेना, रथ सेना, अश्वारोही, गजसेना, नौसेना इत्यादि।

**रथ सेना-** रथों को संग्रमिक कहा जाता था।इसका उपयोग युद्ध में सेना के उच्च अधिकारी गण तथा राजा किया करते थे,प्रत्येक रथ एक सारथी के माध्यम से संचालित किया जाता था, सारथी रथ को चलाने के लिए प्रशिक्षित किये जाते थे।

**अश्वरोही सेना-** यह सैन्यबल के प्रमुख अंग होते थे। अश्वरोही सैनिक अश्वों के कुशल संचालक एवं युद्ध-कला में पारंगत होते थे।

**गजसेना-** यह सेना अत्यधिक शक्तिसंपन्न होती थी जिस राज्य की सेना में गजसेना की संख्या जितनी अधिक होती उनके युद्ध में विजय होने की सम्भावना उतनी ही अधिक बढ़ जाती थी।

**नौसेना-** 'रामायण' में जलपोतों से युद्ध का उल्लेख किया गया है –

**'नावं शतानां पंचानां कैवर्तानां**

**शतम्।सन्नद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत्।।25' वा.रा. ६।५०/२, ६/३७/८**

**वायुयान-** 'रामायण' में रावण द्वारा पुष्पक विमान के माध्यम से युद्ध करने का विवरण मिलता है ।

## युद्ध के नियम

वाल्मीकि रामायण में छल-युद्ध अथवा कूट-युद्ध की निंदा की गयी है, वहीं महाभारत में अधर्मयुद्ध करने वाले को समाज से बहिष्कृत करने का निर्देश दिया गया है, परन्तु आचार्य कौटिल्य और आचार्य शुक्र ने छल-युद्ध अथवा कूट युद्ध को उचित माना है-

**'भूमिद्रव्यपुत्रदारप्राणप्रहरणेन असुरविजयी।**

**तं भूमिद्रव्याभ्यामुपगृह्याग्राह्यः प्रतिकुर्वीत ।।26'** **- कौटि. अर्थ. २।१**

एवं

**'धर्मयुद्धेः कूटयुद्धेः हन्यादेव रिपुं सदा।27'** **- शुक्र ४।३५३**

युद्ध में विजय पक्ष के द्वारा पराजित पक्ष की सम्पूर्ण संपत्ति पर अधिकार कर लिया जाता था और उनके सभी संपत्ति को राष्ट्र सम्पति में शामिल कर लिया जाता था-

**'जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकंस्व□रस्माकं यज्ञो॰ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीराअस्माकम् ॥28' - अथर्ववेद १६/८/१**

युद्ध में हिस्सा न ले रहे व्यक्ति पर प्रहार करना वर्जित था-

**'एकस्य नापराधेन लोकान् हन्तुं त्वमर्हसि।29' वा.रा. अरण्यकाण्ड, ६५/६**

युद्ध आरंभ होने से पूर्व शंख नाद कर युद्ध आरंभ होने की सूचना योद्धाओं को दी जाती थी-

**'तेन शंख-विमिश्रेण भेरिशब्देन नादिना।30' वा.रा. लंका. ३५वाँ सर्ग**

योद्धाओं को नारी, बालक, वृद्ध, विरथ,मुक्तकेश, एवं भग्न शास्त्रायुध पर प्रहार न करने का निर्देश दिया जाता था इस प्रकार के अनेकों नियमों का युद्ध में अनुपालन किया जाता था यद्यपि महाभारत में युद्ध के ऐसे अनेक नियमों का उल्लंघन किया गया परन्तु ये सारे नियम सभी में सर्वमान्य थे इसके एक मात्र अपवाद राक्षसगण थे क्योंकि उनके युद्ध नियम लोक प्रचलित नियमों से भिन्न थे।

## विक्रमादित्यकथा उपन्यास और युद्ध-कला

प्रो.राधावल्लभ त्रिपाठी कृत विक्रमादित्यकथा प्रथम शताब्दी के आस-पास शकों द्वारा भारत पर किये गए आक्रमण को केंद्र में रखकर लिखी गयी है,इस उपन्यास में अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं जहाँ युद्ध कलाओं एवं रणनीतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, 64 कलाओं के अंतर्गत जिन तत्वों का उल्लेख हमें संस्कृत ग्रंथों से प्राप्त होता है उसके बहुत से तत्व हमें विक्रमादित्यकथा में भी वर्णित मिलते हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' सहित अधिकांश संस्कृत ग्रंथों में राजकुमारों को अन्य शिक्षण गतिविधियों के साथ-साथ युद्ध-कला के प्रशिक्षण के अनेक सदर्भ मिलते हैं,विक्रमादित्यकथा में कुमार विक्रम सहित दस कुमार वामदेव के आश्रम में युद्ध-कला के प्रशिक्षण प्राप्त करने का परिचय मिलता है-**"महर्षि वामदेव के आश्रम में चतुष्टयी (चार वेद) और आन्वीक्षिकी के साथ वार्ता (कृषि और पशुपालन तथा विभिन्न शिल्प) का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। और अवैदिक दर्शनों की जानकारी दी जाती थी (आयुर्वेद, रथचर्या और मल्लविद्या और धनुर्वेद में तो यहाँ के अन्तेवासी पारंगत होकर निकलते थे।31'**

युद्ध-कला में व्यूह रचना का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान था,यह एक ऐसी रणनीति थी जिसमें शत्रुओं को योजना बनाकर सरलता से परास्त किया जा सकता था संस्कृत ग्रंथों में अनेकों प्रकार के चक्रव्यूह रचना का विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है,विक्रमादित्यकथा में व्यूह रचना का संकेत मात्र प्राप्त होता जब उज्जैन की राजकुमारी अवंतिका भी चक्रव्यूह में फंस जाती है और शत्रुओं से लोहा लेती है बालचंद्रिका राजकुमारी अवंतिका का मुख देखकर सोचती है-**"पिछले दो वर्षों के भयावह सन्ताप की लू ने जैसे माधवी लता को झुलसा दिया था। कैसे अदम्य साहस के साथ वे शत्रुओं के व्यूह में अकेली जूझती रही थीं32"**

युद्ध के दौरान सैनिक संचालन में सुगमता के लिए राजाओं द्वारा युद्ध स्थल के निकट स्कंधावार (अस्थायी शिविर) निर्माण करवाया जाता था इस उपन्यास में जब मिनानडर द्वारा मगध पर आक्रमण किया जाता है तब मगधनरेश राजहंस द्वारा युद्ध संचालन में सुगमता हेतु स्कंधावार का निर्माण कराया जाता है-**"महाराज राजहंस ने तत्काल विन्ध्य के प्रशस्त क्षेत्र में स्कन्धावार बनवाकर वहीं से युद्ध का संचालन करने का निर्णय लिया। पाटलिपुत्र तक दुष्ट मदनाद्रि पहुँच ही नहीं पाएगा। वे उसे मार्ग में ही रोक लेंगे। चतुरस्र (चौकोर) स्कन्धावार बनवाया गया था। इसमें चार द्वार थे, छह पथ और नौ संस्थान (मुहल्ले या वार्ड)। वप्र और परिखा का भी निर्माण करा लिया गया था। कोष्ठागार, महानस (रसोई), कुप्यायुधागार के लिए विशेष व्यवस्था की थी। वणिक् और रूपाजीवाएँ तो स्वयं चले आये थे साथ-साथ।33"**

रणभूमि में राजाओं की शक्ति का अनुमान उनके सैन्य टुकड़ियों पर निर्भर करता है,युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए एक सशक्त सैन्यबल का होना अनिवार्य शर्त थी। विक्रदित्याकथा में भी सैन्य टुकड़ियों का परिचय प्राप्त होता है विशेषकर गजसेना का अधिक महत्व बताया गया है,राजहंस युद्ध में अपने पराजय का मुख्य कारण गजसेना का उचित संचालन न कर पाना स्वीकार करते हैं-**"मूल बल (मुख्य सेना) की दो अक्षौहिणियों के साथ विन्ध्याटवी के स्कन्धावार में आ गयी थी। पार्ष्णि (पीछे रहने वाली सेना) के साथ सुमति और सुमन्त्र को रहना था।34"**

गजसेना के विषय में चर्चा करते हुए कहते हैं-**"भगवन्, कहाँ चूक हुई हमसे?" यह प्रश्न उन्होंने महर्षि वामदेव से किया था, फिर कहा था, "मुझे लगता है कि हमारी गजसेना का सही उपयोग हम न कर सके। महामति कौटिल्य ने लिखा है- 'हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञः'- राजा हाथियों की सेना के द्वारा विजय भी प्राप्त करता है, और हाथियों की सेना ही समुचित उपयोग न किये जाने पर पराजय का कारण भी बनती है।35"**

इस शोध-पत्र में पूर्व में ही दूत अथवा गुप्तचर के विषय में चर्चा की जा चुकी है,उनकी राजव्यवस्था में भूमिका एवं कार्य का अत्यधिक महत्त्व था प्रस्तुत उपन्यास में गुप्तचर किस प्रकार सूचनाओं को एकत्रित कर राजा को सूचित करते थे इसका सुन्दर वर्णन मिलता है जब महाराज राजहंस का गुप्तचर शुक राजकुमार अपहार के बारे में उनको सूचित करता है-**"शुक उनका विश्वस्त सेवक था। परम चतुर। वह पूरे मगध के समाचार लाया था। पाटलिपुत्र और मिथिला में अराजकता फैल गयी थी। लूटपाट मची हुई थी। चरों को समझाया गया था कि वे सीमान्त के शबरग्रामों में विशेष रूप में खोज करें। पता चला कि मिथिला के पास एक शबर ग्राम में किसी परिवार में एक बालक है, जिसके लक्षण मिथिला के राजकुमार अपहार से बहुत मिलते हैं।36"**

जब शत्रु अत्यधिक शक्तिशाली होते थे और उनके पास विशाल सेना होती ऐसी स्थिति में शत्रुओं से निपटने के लिए सैन्य-संधि की जाती थी जिससे शक्ति संतुलन स्थापित हो सके और विरोधी सैन्य दल से अधिक सेना एकत्रित की जा सके यह रणनीति आज अंतरष्ट्रीय स्तर पर भी कारगर है,विक्रमादित्यकथा में जब शकराज

मोघ भारतीय उपमहाद्वीप पर आक्रमण कर देता है तब आचार्य वामदेव दासों राजकुमारों को पूरे भारतवर्ष से सेना एकत्रित करने भेज देते हैं-**"सारी स्थिति समझाकर महर्षि ने दसों कुमारों को अलग-अलग स्थानों पर जाने का आदेश दिया था। सबके पास बलिष्ठ अश्व थे, जो एक दिन में सौ योजन (आठ सौ मील) की यात्रा अक्लान्त अश्रान्त कर सकते थे, विद्युत् की गति से दौड़ सकते थे.) दुर्गम नदियों, खाई खन्दकों को पार कर सकते थे। सबसे दूरस्थ देशों में जाना था दादा विश्श्रुत, मन्त्रदेव, मित्रदेव को। दादा विश्रुत से महर्षि ने विशेष रूप से विस्तार से विर्भ देश के विषय में बताया था, वहाँ के शासक महाराज पुण्यवर्मा के पुण्य और प्रताप की कथा बतायी थी, और कहा था कि समय कम है, पुण्यवर्मा से समय रहते भेंट हो जाए, यह प्रयास करना है और जितनी शीघ्रता से सम्भव हो, उनसे सहायता लेकर कुमार विक्रम के पास उसे पहुँचना है। विश्रुत तो कार्तिक मास में ही विदर्भ की ओर चल पड़े थे। मन्त्रदेव को कलिंग देश में महाराज खारवेल के पास जाना था। वहीं से आन्ध्र के राजा सातकर्णि से भी सम्पर्क उसी को करना था। सुनास इन दिनों कलिंग में और सुकेशआन्ध्र में था। इनके माध्यम से सहायता मिल सकती थी। मन्त्रदेव पिता सुमन्त्र के पास कुछ दिन रुककर आग्रहायण (अगहन) के महीने में कलिंग की ओर चल पड़ा। मित्रदेव को मगध और कलिंग के मध्य में बसे सुह्य देश जाना था-सागर के किनारे ताम्रलिप्ति नगरी में। अपहार और उपहार अपने माता-पिता को खोजने के लिए भी व्यग्र थे। उन दोनों का प्रस्ताव था कि वे चम्पा, मिथिला और पाटलिपुत्र-इन तीनों नगरों में छानबीन भी करेंगे और पूरे मगध से जितनी सेना प्राप्त कर सकेंगे, लेकर वत्स देश की ओर बढ़ेंगे। प्रमति को उसके पिता सुमति ने ही साकेत की ओर जाने का परामर्श दिया था। सोमदत्त को विदिशा और उससे आगे अयरण जाना था, अर्थपाल को काशी।[37]"**

एक वीर योद्धा को प्रत्येक क्षण युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए,यह भी युद्ध-कला कौशल का प्रमुख अंग है , राजकुमार विक्रम उज्जैन के यात्रा के दौरान अपने उस युद्ध कौशल का परिचय देता जो आचार्य वामदेव के आश्रम में उसने सीखी थी-**"कुमार विक्रम सावधान था। दोनों में युद्ध होने लगा। आलीढ़ और प्रत्यालीढ़, मण्डल और आवर्त सभी मल्लविद्या के पैंतरे दोनों दिखाने लगे। राजवाहन को पता चल गया कि वह पुरुष कुशल मल्ल भी है और शस्त्र चलाना जानता है। पर किसी गुरु से उसने मल्लविद्या और अस्त्र-शस्त्र सन्धान सीखा हो, ऐसा नहीं लगता था। उसके पैंतरे अटपटे और अप्रशिक्षित के द्वारा स्वयं आविष्कृत लगते थे। उसने सिंहपात किया, तो कुमार विक्रम ने श्येनपात करके उसे नीचे गिरा दिया। फिर कुमार ने कुछ ऐसे दाँव दिखा दिये, जो पितृव्य सुमन्त्र ने उसे विशेष रूप से सिखाये थे। उसका प्रतिद्वन्द्वी ढीला पड़ने लगा। बचाते बचाते उसे कुमार विक्रम की तलवार से खरोंचें लग गयीं। राजवाहन ने भी जान-बूझकर उस पर घातक प्रहार नहीं किया।[38]"**

प्रस्तुत उपन्यास से असि, कुन्त,धनुष-बाण आदि अस्त्र-शास्त्रों का भी परिचय प्राप्त होता है-**"गुफा बहुत बड़ी नहीं थी। दीप जल रहा था, जिसके आलोक में कुमार देख सका-असि, कुन्त, धनुष-बाण और अनेक अस्त्र।[39]"**

## वर्तमान परिदृश्य में युद्ध-कला का महत्व

भारतीय आचार्य युद्ध की विभीषिका और इसके नकारत्मक परिणामों को जानते थे किन्तु आधुनिक मानव समाज दो विश्व युद्ध लड़ने के पश्चात् इसके विभीषिका और नकारत्मक परिणामों को जान सका है। आज विश्व-भर की सरकारें युद्ध को टालने के लिए प्रयासरत हैं,हालांकि शक्ति संतुलन को अपने पक्ष में बनाये रखने के लिए राष्ट्रों के मध्य हथियारों की होड़ अब भी जारी है जिसके परिणामस्वरूप विश्व के कई हिस्सों में युद्ध हो रहे हैं जैसे वर्तमान में जारी इजरायल-फिलिस्तीन युद्ध,रूस-युक्रेन युद्ध आदि,इसे देखते हुए युद्ध-कला का महत्व अब भी बना हुआ है। राष्ट्र सुरक्षा अब भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, अन्तराष्ट्रीय पृष्ठभूमि में युद्ध के लिए रणनीतियां अनिवार्य हैं। आज वैश्विक शांति को बनाये रखने के उद्देश्य से राष्ट्रों के मध्य शांति-संधि,मैत्री-संधि आदि उपायों का सहारा लिया जा रहा है,UNO जैसी अन्तराष्ट्रीय संस्थाओं का उदय ही अंतराष्ट्रीय पटल पर युद्ध को रोकने एवं वैश्विक शांति बनाये रखने के लिए हुआ है।

## निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय शिक्षण संस्थानों में दी जाने वाली 64 कलाओं का ज्ञान न केवल विद्यार्थियों को रोजगार प्रदान करने में सहायक था अपितु उनके सर्वांगीण विकास के लिए महत्वपूर्ण था। युद्ध-कला के प्रशिक्षण के माध्यम उन्हें आत्मरक्षा और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया जाता था हालांकि युद्ध को भारतीय आचार्यों ने समाज का एक अनिवार्य दोष माना है,उन्होंने युद्ध को एकमात्र विकल्प के रूप में स्वीकार नहीं किया है,युद्ध से पूर्व शांति संधियों के माध्यम से युद्ध को टालने का प्रावधान भी किया ऐसे बहुत से उदहारण 'रामायण' और 'महाभारत' सहित संस्कृत ग्रंथों में मिलते हैं जैसे 'रामायण' में राम द्वारा अंगद को शांति दूत बनाकर भेजना, 'महाभारत' में श्री कृष्ण का शांति दूत बनकर कौरवों के पास जाना। वैश्विक स्तर पर युद्ध-कला आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.शुक्रनितिः भाग-2 पृ.521:डा. जगदीशचंद्र मिश्र,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी 2019

2.शुक्रनितिः भाग-2 पृ.522:डा. जगदीशचंद्र मिश्र,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी 2019

3.भा.पु. ४५/३६

5.शुक्रनितिः भाग-2 पृ.526:डा. जगदीशचंद्र मिश्र,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी 2019

6. वि.पु. ७.३

7. ऋग्वेद ५/६०/५

8. यजु० वा.सं. ३।४

9. अथर्ववेद ३/३०/१

10. ऋग्वेद ७/३३

11. ऋग्वेद. ७.१९.५

12. वा.रा. ६.१०८.२३

13. महाभारत भी.पर्व ५०/२२-२३

14. ऋग्वेद. ७/११८

15. ऋग्वेद ८।२८।५

16. वा.रा.अरण्यकाण्ड १२वाँ सर्ग ३६

17. महाभारत वनपर्व अ.164-169

18. वा.रा. २।३१।९

19. वा.रा. ५/८२/१६

20. महाभारत,वीरमित्रोदय-लक्षण, पृष्ठ 226

21. ऋग्वेद ७।८८/५

22. वा.रा. ७/५/२४

23. मनुस्मृति ८/३६

24. कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ.99:उदयवीर शास्त्री,अमृत प्रेस ,अमृतधारा भवन ,लाहौर 1925

25. वा.रा. ६।५०/२, ६/३७/८

26. कौटि. अर्थ. २।१

27. शुक्र ४।३५३

28. अथर्ववेद १६/८/१

29. वा.रा. अरण्यकाण्ड, ६५/६

30. वा.रा. लंका. ३५वाँ सर्ग

31. विक्रमादित्यकथा पृ.29 :राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

32. विक्रमादित्यकथा पृ.19 :राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

33. विक्रमादित्यकथा पृ.38 :राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

34. विक्रमादित्यकथा पृ.39 :राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

35. विक्रमादित्यकथा पृ.39 :राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

36. विक्रमादित्यकथा पृ.50 :राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

37. विक्रमादित्यकथा पृ.74-75 :राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

38. विक्रमादित्यकथा पृ.82-83 :राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

39. विक्रमादित्यकथा पृ.100:राधावल्लभ त्रिपाठी,भारतीय ज्ञानपीठ तृतीय संस्करण,नई दिल्ली 2016

## इन्टरनेट

4. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%9A%E0%A5%8C%E0%A4%B8%E0%A4%A0_%E0%A4%95%E0%A4%B2%E0%A4%BE%E0%A4%8F%E0%A4%81